बहने के बाद

अमिता नीरव

हिन्दी ADDA

बहने के बाद

कभी यकीन ही नहीं हुआ कि आत्मा-वात्मा जैसा कुछ हुआ करता है। जो ना बायोलॉजिकली कुछ हो ना ही सायकोलॉजिकली, उसका क्या निशान...? कहते रहें

कहने वाले कि उसका इतना वजन होता है और वो होती है... होती है तो कहाँ होती है? आत्मा मरती नहीं है, शरीर मरते हैं, लेकिन जितने शरीर मरते हैं, उससे कहीं ज्यादा पैदा होते हैं, तो क्या आत्मा भी बनती है, या जन्मती है... और जन्मती है तो फिर मरती भी होगी... क्योंकि दुनिया में कुछ भी ऐसा पैदा नहीं हुआ है, जो मरे ना... तो फिर... बहुत सारे सवाल, बहुत सारे तर्क है, जिनके जवाब नहीं मिलते हैं। अपनी आत्मा को जवाब देना है या फिर आत्मा कैसे मानती है, जैसे जुमले दरअसल आत्मा के लिए नहीं, बल्कि नैतिकता और सामाजिकता के लिए हुआ करते हैं। बुद्धि कहती है कि जो कुछ भी हमें नैतिक-अनैतिक बचपन से सिखाया जाता है, हम उसके आधार पर ही व्यवहार करने लगते हैं, और उसे ही आत्मा समझ लेते हैं।

मुझे नहीं यकीन है आत्मा पर..., लेकिन आज लगा कि शायद कुछ होगी... तभी तो चोला बदल गया है, अभी जो शशांक के साथ थी, वो कोई और थी और मैं कोई और हूँ। कोई और थी जो उस पागलपन में थी, जिसकी शिराओं में तूफान था और जिसके आवेग में सब कुछ बह गया था, वो सब जिसे उसने सहेजा था, उस आवेग के सामने वो हार गई थी, जिससे उसने लंबा संघर्ष किया था। जिसे उसने हर बार खुद से दूर धकेला था, लेकिन वो उन्माद बन-बनकर हर बार आकर उसे चुनौती देता रहा है। आखिर तो वो लगातार-लगातार के थपेड़ों में कमजोर पड़ ही गई और टूट गई। क्या वाकई इसे टूटना कहते हैं...? क्या उसने इतने से सुख के लिए इतनी लंबी यातना सही... क्या बस इतना ही था, उसके संघर्ष का, खुद से लड़ने का, हार जाने का हासिल...? इतनी सारी और इतनी लंबी प्यास की तृप्ति बस इतनी-सी थी... और क्या ये इतनी-सी तृप्ति के लिए इतने सारे बंधन है, दुनिया में... चरित्र, नैतिकता, पवित्रता... बेवफाई और पता नहीं क्या-क्या...? क्या इस आधे घंटे के आवेग से मेरा पूरा-का-पूरा चरित्र खराब हो गया, क्या इससे मैं बेवफा हो गई... क्या मैं अनैतिक हो गई हूँ... ? उफ्... जैसे पिछले २ सालों में न जाने कितनी बार सिर घूमा था मेरा आज भी उसी तरह से घूम रहा है।

वो सारा उन्माद... प्रवाह, पागलपन, सब बह गया, चला गया कहीं, खत्म हो गया और मैं पड़ी हुई हूँ यहीं किनारे पर अपने ढेर सारे प्रश्नों के साथ... लगता था कि सारी जद्दोजहद खत्म हो जाएगी, उस छटाँक भर तृप्ति के बाद... लेकिन नहीं हुई... फिर छटाँक भर तो आज लगती है, तब तो बेचैनी थी, पहाड़-सी, समंदर-सी जिसका सिरा नजर नहीं आता था... या तो गहरी खाई नजर आती थी या फिर सिर्फ हरहराता पानी... गहरी कसमसाहट थी, मजबूरी... और आवेग था सारे बंध तोड़ देने का, सारी वर्जनाओं को लाँघ कर मन के साथ बह जाने का, कभी तो इतनी निराशा हुआ करती

थी कि लगता था कि कभी... कभी ये मजबूरी खत्म भी होगी...? और आज जब पूर्वा मजबूरी को जीतकर इस पार खड़ी है तो सवाल दूसरी तरह से उठ खड़े हो गए हैं... क्या कहीं भी, जीवन के किसी भी नुक्ते पर सवालों से निजात नहीं है...?

शशांक अब भी सो रहा है, उसके नंगे पेट पर अपना हाथ रखे, जिसके नीचे से पसीने का चिपचिपापन महसूस हो रहा है उसे। उसकी कसरती बाँह के नीचे शिथिल पड़ा है पूर्वा का बदन... अधनंगा... तृप्त, थका हुआ, श्रांत...। क्या जिसने भोगा वो मैं ही थी, अब न तो वो भोग था और न ही वो अतृप्ति थी, अब तो एक दृष्टा है जो पूर्वा से पूछ रहा है... 'क्या इतनी-सी बात के लिए इतना संघर्ष किया था और क्या वो प्यास इतनी बड़ी, इतनी अहम थी, जिसके लिए इतना संघर्ष किया...? कौन थी अतृप्त, किसको थी प्यास... शायद वही थी जिसने भोग लिया... तो फिर मैं कहाँ हूँ, मैं कौन हूँ और यहाँ, इस बिस्तर में, अपने से १० साल छोटे इस डेढ़ साल से परिचित पुरुष के साथ क्या कर रही हूँ? जिसके साथ मेरा कोई रिश्ता नहीं है और न ही कोई रिश्ता हो सकता है...? उफ्...।' पूर्वा ने अपनी आँखें कसकर बंद कर ली... एक गहरी साँस ली। शशांक ने कुनमुनाकर उसे अपने और करीब खींच लिया। पूर्वा ने फिर से खुद को बेबसी में छोड़ दिया।

वो वहाँ थी... वहाँ ही नहीं भी थी। वो वक्त का हिसाब करके खुद को चीन्हने की कोशिश कर रही थी... लेकिन कहीं ये कवायद बीच में ही दम तोड़ देती है और यहाँ बिस्तर में शशांक के साथ पड़ी पूर्वा उस पूर्वा की छाया भी नहीं पकड़ पा रही है, जो अभी घंटे भर पहले थी। किसी तूफान को भीतर समेटने को आतुर... उस तूफान में बह जाने और खत्म होते जाने के लिए तैयार... वो कौन थी...? पूर्वा ही...। पूर्वा समझ नहीं पा रही थी कि संघर्ष तो उसका था, और तृप्ति भी उसी की थी, फिर वो शांत क्यों नहीं हो पाई और शशांक इतना शांत होकर कैसे सो रहा है? उसके जीवन में उस गुजरे वक्त का नक्शा कैसा होगा...? उसने कई बार कहा है उसे पूर्वा से प्यार हो गया है, लेकिन पूर्वा उसके प्यार को नकारती ही रही है, ध्रुव उसकी जिंदगी है... तो फिर शशांक उसके जीवन में कैसे आ धँसा? क्या शशांक उसके जीवन में उस रिसती अतृप्ति के रास्ते आ घुसा, जिससे वो लगातार लड़ रही थी? शशांक ने करवट बदल ली थी और अब पूर्वा उसकी जकड़ से मुक्त हो गई थी। उसने धीरे से खुद को समेटा और पलंग से उतर गई। अँधेरे में ही वो वहाँ से निकली और बहुत एहतियात से दरवाजा उढ़का दिया।

वो ऐसी ही उदास-सी शाम थी, जब उसके मोबाइल पर ई-मेल अलर्ट आई थी। मेल अकाउंट खोला था देखा रिमाइंडर मेल आई है, छह महीने में समरी सब्मिट करनी है और साल भर बाद प्रोजेक्ट रिपोर्ट। सारा ग्राउंड वर्क हो चुका है, बस डेटा की स्टडी

करके एनलेसिस करना है और लिखना है, मुश्किल से ये काम १०-१२ दिनों का होगा, बहुत आराम से करे फिर भी, लेकिन पता नहीं क्या है कि मन ही नहीं लग पा रहा है। सच में पता नहीं है या फिर जो पता है, उसे खुद से कहने में भी डर लग रहा है? तीन साल का अर्सा गुजर गया है, यूँ ही अकेले, शुरुआती कुछ दिन तो जैसे सेलिब्रेशन-सा ही था। देर तक टहलना, कुछ कैनवस पर रंग उकेरना, कुछ यूँ ही पड़े रहना और जीवन में कल्पनाओं के रंग भरना...। फिर धीरे-धीरे अकेलापन लगने लगा था... फिर पता नहीं कहाँ से... एक अभाव गहराने लगा.... कैसे वो पूर्वा की जिंदगी में दाखिल हो गया, समझ ही नहीं पाई वह। और अब... अब तो ऐसा लगता है कि... वो कहीं भी कांसंट्रेट कर ही नहीं पा रही है। कहाँ अटकी हुई है, उसे पता नहीं, या शायद पता है, लेकिन कहने से, सोचने से बचती रहती है। इंस्टीट्यूशन का काम चूँकि उसकी जिम्मेदारी है, इसलिए डे-टू-डे उसका काम शिद्दत से कर रही है, लेकिन व्यक्तिगत काम में एकाग्रता नहीं आ पा रही है तो नहीं ही आ पा रही है। मेल साइन आउट कर डेस्क से उठी ही थी... लेकिन खड़े होते ही लगा कि - कहाँ... क्यों...?

एक नजर अपने केबिन के बाहर देखा... लोग काम कर रहे थे, एक-दूसरे की डेस्क पर बैठकर बातें कर रहे थे और कुछ लोग आ-जा रहे थे। एक बार फिर उसने एक नजर अपनी डेस्क पर डाली, बहुत बेतरतीबी से सामान यहाँ-वहाँ पड़ा था, डेस्क फैलती हुई उसके भीतर उतर आई, भीतर भी सब कुछ बहुत बेतरतीब और अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ है... कब से पता नहीं। डेस्क को तरतीब देने की इच्छा तो हुई ही नहीं और भीतर को तरतीब दी ही नहीं जा सकती थी... बहुत कोशिश कर ली.. लगभग हर शाम ध्रुव से बातें हुआ करती है, स्काईप पर, लेकिन क्या हमें जीवन में इतना ही चाहिए होता है? क्या साथ का अहसास, एक परछाई, एक भ्रम...!

सीट पर बैठते हुए माउस पर हाथ रख दिया... आखिर तो अपनी उलझन और बेचैनी को तरतीब नहीं दिया जा सके तो क्या... उससे अलग तो होना पड़ेगा ना...! माउस पर हाथ रखते ही गोवा-बीच का वॉल पेपर उभर आया। मन ना जाने कितनी दिशाओं में भटकता है, अभी अपनी बेचैनी को सहला रहा था, अभी ये विचार आने लगा है कि अब आज के लिए क्या-क्या बचा हुआ है? तभी लैंडलाइन फोन बजा... सुगंधा थी - पूर्वा मैम कोई शशांक मिश्रा आपसे मिलना चाहते हैं। केबिन में भेज दूँ? नाम तो सुना हुआ लगा उसे, लेकिन याद नहीं आया कहाँ, और किससे? एक मिनट में उसने जितना हो सके उतना अपनी स्मृतियों को खंगाला, लेकिन याद नहीं आया...। याद करने की कोशिश के बीच ही उसने सुगंधा को कह दिया - हाँ, भेज दो। उसके केबिन में आने के बीच के वक्फे में इस बात पर विचार चलता रहा कि कॉफी ले आनी चाहिए या फिर ये

कौन शशांक-वशांक है उससे मिलने के बाद... फिर एकाएक ये विचार भी आया, क्यों न उसके साथ, आखिर कर्टसी तो बनती ही है न!

तभी एक २५-२७ के बीच की उम्र का गोरा-लंबा युवक केबिन में आने की इजाजत चाहता दिखा... किसी धुन में थी पूर्वा... कुछ बुदबुदाया, जिसे उसने आने की सहमति समझ ली... वो कम इन को सुनने के भ्रम में अंदर आ गया...।

पूर्वा अपनी मस्ती में लौट आई थी और उसे शरारत सूझी... वो खड़ी हो गई और गुस्से में उसने उस युवक को देखा - मैंने अंदर आने के लिए कहा क्या?

वो एकाएक इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था, बुरी तरह से हड़बड़ा गया और सॉरी-सॉरी करता हुआ लौटकर बाहर जाने लगा...। पूर्वा को जैसे हँसी का दौरा ही पड़ गया... वो लड़का... शशांक... पूर्वा को एकटक देखने लगा, तो उसने खुद को नियंत्रित करते हुए इशारे से उसे अंदर आने और कुर्सी पर बैठने का संकेत दिया। उसने हँसना बंद किया लेकिन शशांक अब भी हकबकाया-सा उसकी ओर देख रहा था, हँसते-हँसते पूर्वा की आँखों में आँसू आ गए... थोड़ा वक्त लगा संयत होने में इस अर्से में शशांक ने पूर्वा के केबिन का मुआयना कर लिया... संयत होने के क्रम में उसने अपना सिर कुर्सी की पुश्त से टिका दिया... चेहरे पर वैसी ही नमी और सॉफ्टनेस देकर शशांक रिलेक्स हो गया। आय एम शशांक मिश्रा, मुझे प्रद्युम्न टंडन सर ने आपके पास भेजा है। बुद्धिस्ट स्कल्पचर पर काम कर रहा हूँ...। उन्होंने बताया कि आप बेहतर मदद कर पाएँगी... फिर उसने धीरे से कहा शायद आप इस पर कोई किताब भी लिख रही हैं।

आय नो यू आर बिजी, तो जब आपके पास समय होगा दिन में, रात में... दफ्तर, लायब्रेरी या घर, जहाँ भी आप चाहेंगी वहीं आ जाऊँगा। मुझे मालूम है, ये लंबा मैटर है, लेकिन आय होप यू विल हेल्प मी आऊट... - उसने बड़े विनीत होकर पूर्वा से कहा।

नो प्रॉब्लम, अब देखिए दिन भर तो मैं यहीं रहती हूँ, लेकिन यहाँ कभी-कभी इतना काम होता है कि सिर उठाने की भी फुर्सत नहीं मिलती... देखते हैं, थोड़ा यहाँ थोड़ा घर पर और थोड़ा लायब्रेरी में... जहाँ, जैसे वक्त मिले मैं आपकी मदद करती रहूँगी।

कॉफी लेंगे...? - आखिर पूर्वा ने शशांक से पूछ ही लिया, अब तलब उसे भी लगने लगी थी। उसने असमंजस में पूर्वा की तरफ देखा... फिर बहुत संकोच से हाँ में सिर हिला दिया... गुड... आय एम कमिंग इन फ्यू मिनट्स। वो जब लौटकर आई तो उसके हाथ में दो कॉफी के कप थे - 'वो क्या है ना कि इंस्टीट्यूट में जब से मशीनें लगी हैं, आपको सेल्फ सर्विस ही करनी होती है, जब तकनीक काम करने लगे तो समझो इनसान के

भी हाथ-पैर हिलाने के दिन लौट आए हैं। असल में कोई भी तकनीक इनसान का मुकाबला नहीं कर सकती है। कितना भी परफेक्ट काम हो, लेकिन ह्युमन टच जो है ना, उसका कोई तोड़ नहीं है। यू नो... विवेक और सौंदर्य को समझ पाने की दृष्टि इनसान की टेक्नॉलॉजी पर जीत है...।' - तुरंत उसे लगा कि चाहे बात उसने बहुत असंबंद्ध कही है, लेकिन बात में दम है, खुद ही मुग्ध हो गई।

शशांक ने उसकी बात का मर्म समझने के लिए उसके चेहरे की तरफ देखा। एकदम से उसे लगा कि ये बात अर्थ रखती है, लेकिन कितनी सहजता से पूर्वा मैम ने इस बात को कह दिया... बिना किसी बड़ी भूमिका और दर्शन पेश करने के दर्प के... असल में बात से ज्यादा महत्व तो उस भंगिमा का है।

कॉफी पीते हुए कई इधर-उधर की बातें हुई। पूर्वा ने शशांक से उसके काम और उसके जीवन के बारे में बातें की। काम की प्रकृति और उसमें लगने वाले समय और जरूरत भर धीरज की बात भी कही।

शशांक और पूर्वा मिलते रहे। दो-चार बार पूर्वा और शशांक आसपास के म्यूजियम में भी बौद्ध स्कल्पचर को समझने के लिए गए। इन मुलाकातों में दोनों के बीच एक बेतकल्लुफ-सी दोस्ती पनपने लगीं। शशांक जैसे-जैसे पूर्वा को जानने लगा, वैसे-वैसे उसे महसूस हुआ कि उसके मन में पूर्वा के लिए दोस्ती से कुछ ज्यादा है। पूर्वा अपने से बाहर जब भी निकलती तो उसे शशांक पनाह-सा लगता रहा। अब वो शशांक से खुल गई है और उससे अपनी उदासी और डर पर बात करने लगी है। शशांक कई बार उलझ जाता है, उसे पूर्वा की उदासी मोहित करती है, लेकिन उससे ये बर्दाश्त नहीं होती है।

उस दिन पूर्वा बहुत व्यस्त थी, जब शशांक ने उसे फोन किया था...। लंबा वक्त बीत गया था, वो शशांक की कोई मदद कर नहीं पा रही थी। बल्कि अभी तो चार-पाँच दिन हो गए उसकी ध्रुव से भी बात नहीं हो पा रही है। वक्त पता नहीं कहाँ और कैसे गुजर रहा है। दिन भर फोन देख ही नहीं पाई या शायद देखा लेकिन ओवरलुक कर दिया... जो भी हो, उसकी शशांक से बात नहीं हो पाई थी। रोज की तुलना में घर पहुँचने में भी उसे देर हो गई थी। पता नहीं क्यों, उसे ताला खोलते हुए एक अजीब-सी दहशत हुई, वो कुछ देर उस बंद दरवाजे के इस तरफ अनिश्चितता में खड़ी रही... लगा कि भीतर भी कुछ ऐसा ही बंद-बंद सा, घुटता सा है, जो किसी भी सूरत निकल नहीं पा रहा है। फिर जो करना होता है, किया, उस उदास से ताले के मुँह में चाभी डाली और खोल लिया। सुबह जब गई थी तो रोशनी थी, जब लौटी है तो अँधेरा मुँह चिढ़ा रहा है। दहशत और गहरी हो गई... जल्दी से दरवाजे से लगे स्विच बोर्ड के सारे स्विचेस को

प्रेस कर दिया... पंखा, लाइट सब कुछ ऑन हो गए। रोशनी होते ही निराशा थोड़ी छँटी...। मीटिंग में ही हैवी नाश्ता हो गया था, सो फिलहाल खाने के बारे में कोई विचार नहीं किया जा सकता है, चाय चढ़ाई ही थी कि फोन बजा... शशांक... 'आप व्यस्त हैं या फिर बीमार'! उसने बिना हाय-हलो के सीधा ही सवाल दागा था।

'अरे नहीं, व्यस्त थी। कितना काम हुआ?' 'थोड़ी अड़चन है, कब मिल पाएँगीं?' मन थोड़ा ऊब-डूब हुआ था... किसी से मिल पाने की मनस्थिति नहीं थी, लेकिन एकांत से घबराहट भी हो रही थी। उस असमंजस को शशांक ने भाँप लिया था, तभी तो ये पूछने की बजाए कि - मैं आ जाऊँ? उसने कहा - मैं आ रहा हूँ।

पूर्वा ने बिना कुछ कहे फोन काट दिया। शशांक आया तब तक उसने उसकी भी चाय चढ़ा दी थी। जब वो दोनों चाय पी ही रहे थे, तभी तेज अंधड़ चलने लगा था। पूर्वा ने उठकर खिड़की-दरवाजे लगाए... अभी शशांक ने कुछ फोटो और कुछ ब्लू प्रिंट्स खोले ही थे कि लाइट चली गई। देर तक दोनों उस अँधेरे में बैठे रहे, चुप... फिर पूर्वा अपनी कुर्सी से उठी तो शशांक के पैर से टकराकर थप्प से गिर गई... शशांक हड़बड़ा गया और उसने पूर्वा को टटोला... पहले से ही कच्ची हो रही पूर्वा बह निकली थी... पता नहीं कैसे बाँध टूट गया और वो सिसकने लगी... शशांक ने उसे समेट लिया... लंबे समय से बँधी पूर्वा के सारे बंध खुल गए और वो बह गई बहाव में... और अब शशांक उस किनारे पर है और पूर्वा इस किनारे पर...।

हर बार उसे ये अहसास होता कि वो इस अतृप्ति को हरा चुकी है। कुछ दिन उसे लगता कि वो जीत गई है, हमेशा के लिए... लेकिन फिर वो अतृप्ति सिर उठाती है, फिर होता है संघर्ष और फिर वही जीत का भ्रम... वो सोचती है कि क्या वाकई कोई भी जीत या हार स्थायी नहीं होती है? हर चीज भ्रम है...? हर चीज... हार-जीत, पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, वैध-अवैध...। वो बाहर आँगन में आ खड़ी हुई थी। मालवा के पठार पर मानसून की आमद के दिन हैं। ठंडी हवा चल रही है। वो कुछ देर असमंजस में खड़ी है। मन किया नहा लिया जाए... शशांक अब भी सो रहा है, जैसे वो कई रातों से जागा हो। नहाकर आने के बाद एक बड़ा मग ब्लैक टी बनाई और बरामदे में लगी आरामकुर्सी पर आ धँसी... मीठी-सी उदासी, उनींदा और अकेलापन था... चाय के घूँट भरते-भरते उसे शिद्दत से लगने लगा था कि यदि यहीं मर जाए तो वह कितनी उदासी और गुत्थियाँ अपने साथ ले जाएगी... क्या वाकई यहाँ से कुछ साथ जाता है? पता नहीं...।

कुछ देर यूँ ही वो अँधेरे में बैठी रही। लाइट अब भी नहीं आई है। हवाओं की ठंडक साँसों के रास्ते उसके फेफड़ों में भरने लगी... उसने आसमान पर नजर फेरी... काले पर्दे पर भूरे-भूरे से चकते-से उभरते और आकार बदलते बादलों को देखना उसे भला लगा... महसूस हुआ कि उसके भीतर की सारी काई साफ हो चुकी है, सारे वाद-विवाद, तर्क, डर, तनाव, दबाव सब कुछ बह गया... अब सिर्फ एक शांत झील बची है... स्थिर... शांत, निशब्द...। सारे द्वंद्व, सारे तर्क, सारे किंतु-परंतु जैसे अस्तित्वहीन हो गए... भीतर सब कुछ ठहर गया था... उसे अपना भीतर-बाहर बिल्कुल साफ और पारदर्शी लगा... खुद के हाथ में वो खाली पेपर-सी आकर ठहर गई... वक्त को पेन बनाकर वो जो चाहे खुद से लिखवा सकती है... वो अपना लैपटॉप लेकर बाहर आ गई। बाहर बूँदाबाँदी कब शुरू हुई, उसे पता नहीं चला, अपना प्रोजेक्ट खोला तब स्क्रीन के राइट बार में लगी डिजिटल घड़ी में १० बजकर २७ मिनट हो रहे थे।

पास पड़ी तिपाई पर उसने चाय का मग रखा और प्रोजेक्ट पर ध्यान लगाया। उसकी चाय पता नहीं कब ठंडी हुई, लाइट आ चुकी थी। उसने चार्जिंग प्लग लगाया... एक गहरी साँस ली और डाक्यूमेंट को पढ़ा... अरे... सिर्फ कन्क्लूजन ही बचा हुआ है, कितने दिनों से अटका था काम... संदेह हुआ करता था, कभी पूरा होगा... और अब... किनारे पर आ लगा है जैसे। घड़ी देखी तो रात के तीन बज रहे थे। पता नहीं शशांक की नींद कैसे खुली उसने पीछे से आकर उसके बालों को चूमा... पूर्वा ने कंधे पर पड़े उसके हाथों को थपका... शशांक ने पूछा - सोई नहीं? बारिश तेज हो गई थी। लगता है मानसून आ गया है - पूर्वा ने मुस्कुराते हुए शशांक का हाथ चूम लिया।